1950G Consideration of Likelihoods and Alternative

आशंकाएं-सम्भावनाएं पर विचार

"नत्थि नएहि विहूणं, सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि।
आसज्ज उ सोयारं, नए नयविसारओ बूया॥"

आर्हत-प्रवचन की जो विशेषता रही-चली रही है वह यही कि-उसमें प्रत्येक वस्तु का विचार नाना-दृष्टियों से—भिन्न-भिन्न पहलुओं-से किया जाता है और किया जाना भी ऐसा ही चाहिए। क्योंकि-जब प्रत्येक वस्तु ही अनन्त धर्मात्मक है, तो उसका पूर्ण ज्ञान अथवा निर्णय किसी एक धर्म द्वारा कैसे किया जा सकता है? इसीलिए महर्षि-ने आज्ञा दी है कि नय विशारद लोग, नाना-दृष्टियों से ही किसी वस्तु का निरूपण करें; क्योंकि जैनागम में तो कोई भी कथन-नय-विहीन नहीं है। उक्त रहस्य को लक्ष्य रखकर जैनाचार्यों ने [illegible]। यही कारण है कि समन्तभद्र जैसे [illegible] ने आप्त की मीमांसा करते हुए भी, उनके निर्दिष्ट तत्त्वों की, जैसे—भेदवाद-अभेदवाद, एकवाद-अनेकवाद, नित्यवाद-अनित्यवाद आदि की; नाना-दृष्टियों से की [illegible] और [illegible] —[illegible]—

"त्वया गीतं तत्त्वं बहुनयविवक्षेतरवशात्"

× × ×

गत अंक में 'आशंकाएं-सम्भावनाएं'[1] शीर्षक एक विस्तृत एवं अनेक प्रमाणों से ओत-प्रोत लेख प्रकट हुआ है। विद्वान् लेखक ने इस आलेख के विषय की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित ~~[illegible]~~ विवाद में पड़े हुए तत्त्व की जटिलता को सुलझाने का प्रयत्न किया है। लेख प्रकट होने के कुछ पूर्व जब लेखक मेरे यहां कुछ समय के लिए आए थे, उस समय उक्त प्रकरण को छेड़कर, उन्होंने मेरा अभिप्राय [illegible] मैंने भी वचन दे दिया था कि आपका लेख प्रकट हो जाने पर मैं अपनी सम्मति दे दूंगा। उसके कुछ दिन बाद ही उन्हें [illegible] आया और वहां भी [illegible] एक विचार [illegible] ने इसी प्रकरण को छेड़ कर मेरा मत मांगा। [illegible] उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि [illegible] क्यों नहीं [illegible]—

---

[1] 'आशंकाएं' पद अशुद्ध है [illegible] 'ए' ही होता [illegible]।

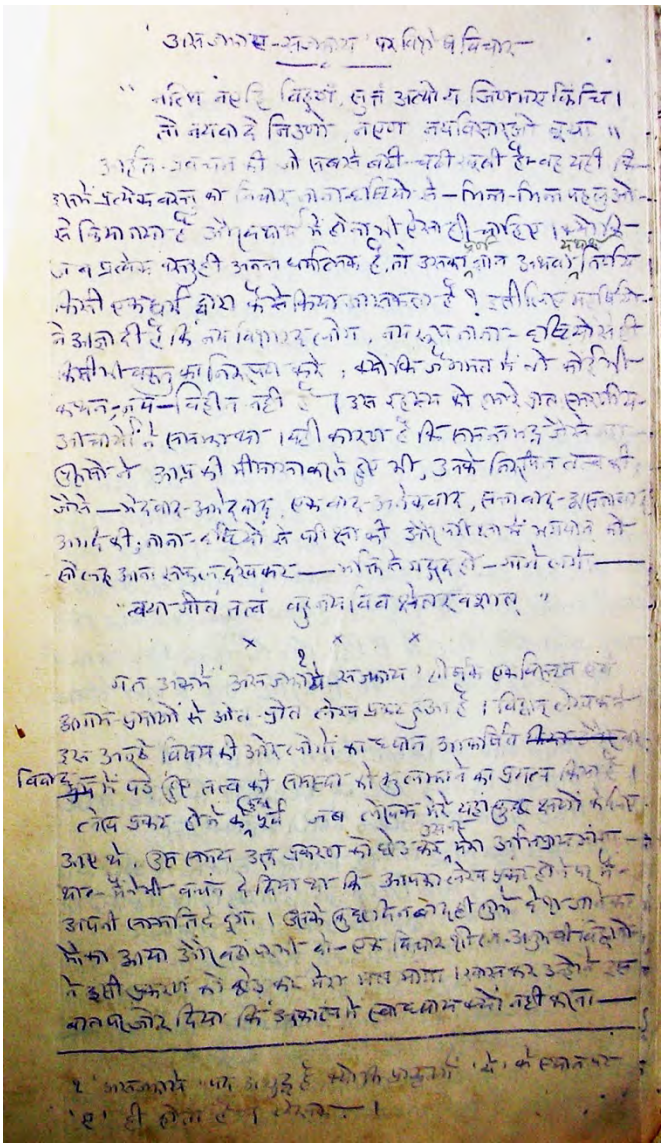

चाहिए? उनका कहना था कि ध्यान के समय-सामायिक के कालमें तो स्वाध्याय का निषेध उचित है, पर अन्य कालों का तो कुछ स्पष्ट रूप से पता नहीं चलता, आदि। मुझे इस विषय पर विचार करने की एक दूसरी प्रेरणा मिली। इधर समारक जी का भी आग्रह था कि गत मास में दर्शन के लिए आपने मैटर नहीं भेजा सो कागज लिखें, तथा इस मास के लिए सुन्दर लेख अवश्य भेजें। मैंने उचित समझा कि जो सामग्री मस्तिष्क में प्रस्तुत है लोगों का अधिकार: सम्भवत: आकांक्षणीय और प्रकरण संगत है, उसी पर ही क्यों न लेख लिखूं?

× × ×

अकाल क्या है, काल क्या है? स्वाध्याय और अस्वाध्याय क्या वस्तुयें हैं? इन बातों का स्पष्ट-विवेचन तो लेखक ने अपने लेख में समाप्त नहीं किया है अत: उस पर मुझे कुछ भी कहना नहीं है। मुझे केवल इस बात पर अपना अभिप्राय प्रकट करना है कि क्या अकाल में भी स्वाध्याय किया जा सकता है? क्या इसके लिए साधु और श्रावक को एक सी आज्ञा है? और यदि अकाल में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए तो क्यों नहीं? मैं इन्हीं तीनों प्रश्नों का उत्तर अपने लेख में दूंगा और यही मेरे लेख का उद्देश्य है।

× × ×

मैं सर्वप्रथम तीसरे प्रश्न का समाधान करता हूं, क्योंकि उसके प्रथम के दोनों प्रश्नों का उत्तर स्वयं ही हो जाता है।

स्वाध्याय के जितने अकाल बतलाए हैं उन सभी को एक शब्द से 'अकाल' मानना उचित प्रतीत नहीं होता। हां, त्रुटि का एक कारण हो सकता है, यह दूसरी बात है।

मूलाचार के अनुसार - दिग्दाह, उल्कापात, इन्द्रधनुष, सूर्य चन्द्र ग्रहण, बिजली तड़कना, मेघ-गर्जन, वर्षा-पतन, इन्द्रधनुष उदय, सन्ध्या, दुर्गंध या दुर्दिन, कलह आदि उपद्रव, इन्द्र कोलाहल, मुर्दा इत्यादि को स्वाध्याय के लिए अकाल माना गया है।

इन अकालों में से 'सन्ध्या' को अकाल मानने का यह आशय किया जाता है कि वह काल सामायिक या ध्यान का है, उस वक्त स्वाध्याय करने से ध्यान का समय भंग होता है, आदि।

पर यह सामायिक व्याख्यान उचित प्रतीत नहीं होता, कारण कि — न तो इनकी उत्पत्ति आगम से ही होती है और न युक्ति से ही, अपितु वे इसलिए नहीं, कि सामायिक भी अलग-अलग है और व्याख्यान भी। स्वरूप - आगम - अध्ययन सामायिक। ऐसा अर्थ करने पर तो सामायिक और व्याख्यान का आशय भी एक ही हो जाता है। थोड़ी देर के लिए उक्त अर्थ को न भी मानें, तो भी सामायिक का महत्व ~~[illegible]~~ स्वाध्याय से भिन्न नहीं है, परस्पर दोनों कार्य-कारण का ही सम्बन्ध रखते हैं। इसके सिवाय आगम में कुछ ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे भी उक्त काल सिद्ध नहीं होता है। जैसे — यही समय भगवान की दिव्यध्वनि होने का है और यही सामायिक का काल है और यही संध्या को उद्योत करने के अनध्याय का समय है। इस कथन से स्पष्ट पता चलता है कि यदि तीनों संध्याएं यथार्थ में स्वाध्याय के लिए अकाल होतीं तो न तो भगवान की ही इस समय में दिव्यध्वनि प्रकट होती न भव्य जीव ही उसे अपना ध्यान का समय छोड़कर सुनने पहुंचते क्योंकि अकाल में ~~[illegible]~~ ध्यान — शास्त्र पठन-पाठन करते हैं तो जो निषिद्ध बतलाया गया है कि स्वयं भगवान की ओर से ही, ऐसी अप्रामाणिकता की अवस्था पैदा की जाय — यह कुछ बात समझ में नहीं आती। इसी बात की पुष्टि [illegible] से हो जाती है जिसमें यह बताया गया है कि [illegible] को जम्बू कुमार आदि [illegible] अन्तिम [illegible] आयु [illegible] सूत्र [illegible] को सुनने से [illegible] गया आदि। इससे मालूम होता है कि 'सन्ध्या' का जो अर्थ लोग लेते हैं यथार्थ में वह नहीं है। उसका कुछ दूसरा ही अर्थ है। मूलाचार की [illegible] २३० [illegible] गाथा की टीका में ही 'सन्ध्या' का अर्थ स्पष्ट किया गया है — "सन्ध्या लोहितपीतवर्णाकार।" अर्थात ~~[illegible]~~ जिस समय आकाश लाल पीला रंग ~~[illegible]~~ का आकाश दिखाई दे वे उसे सन्ध्या कहते हैं। यह ठीक है कि [illegible] और [illegible] दिखाई पड़ता है, पर [illegible] में यह नहीं किया गया है।

मेरी राय से लिए यदि यही मान लिया जाय कि आचार्य का अर्थ ज्ञान लक्षण से प्राप्त [illegible] ही है, तो भी उस समय [illegible] का ध्यान रखने की गलती भी नहीं है। [illegible] में बतलाया गया है कि — गणधर-प्रत्येक बुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्नदशपूर्वी-कथित सूत्रों को छोड़-कर अन्य शास्त्रों का 'अकाल' में स्वाध्याय किया जा सकता है।

शंका — गणधरादि कथित सूत्रों के स्वाध्याय की ही सही, परन्तु अकाल में उन के स्वाध्याय का तो निषेध ही रहा। कि [illegible] [illegible] माना जाय? दूसरे यह भी बतलाइए — कि आचार्य — पंच [illegible] आदि शास्त्रों के स्वाध्याय का तो निषेध क्यों नहीं बताया — और गणधर-कथित-सूत्रों के स्वाध्याय का निषेध क्यों किया?

समाधान — आपकी शंका का समाधान उसी बात को गम्भीर दृष्टि-से देखने पर हो जाता है। गणधरादि-कथित-सूत्रों के [illegible] ही [illegible]-ओं में नहीं पढ़ने के कई कारण हैं। जिनमें से प्रधान कारण तो यह — प्रतीत होता है कि — [illegible] श्रावक या साधु को शान्ति के साथ बैठकर यह भावना [illegible] — कि मैं [illegible] धन्य हूँ, जो इस समय [illegible] — तीर्थंकरों के समवसरण में बैठकर उनकी — द्वादशांग-[illegible] [illegible] का पान कर रहे हैं। तो भी वह [illegible] — जब हम भी साक्षात् तीर्थंकर-ध्वनि को इसी प्रकार सुनकर [illegible] आदि।

मेरे इस कथन को, केवल ही [illegible] ही, [illegible] कल्पना कह-देंगे — पर मैं उनसे यह निवेदन करूँगा — कि भाई, मेरे इस कथन की पुष्टि, ऐसे ही अन्य-ग्रन्थ-लिखित उपायों से होती है। जैसे — श्रावकाचारों में बतलाया है कि श्रावक को चाहिए कि यदि आहार-देने के समय साधु का लाभ न हो तो [illegible] विचार करे — कि वे लोग धन्य हैं, जो इस [illegible] में [illegible] साधुओं को आहारदान देते हैं, मैं [illegible] कि मुझे भी यह अवसर प्राप्त हो आदि। जब आहार-दान के लिए [illegible] — [illegible] में कहीं [illegible] मिलती है — तो वहीं [illegible] यहाँ भी कल्पना [illegible] किसी भी हालत में असंगत नहीं कहा जा सकता।

शंका — आपके इस समाधान से तो एक और नई शंका पैदा होती है कि जैसे आहार-दान के समय [illegible] —

यदि दैववशात् उसी समय - कोई साधु आ जाय - तो वह उसे आहार-दान कर सकता है। तथा इसी प्रकार यदि किसी साधु का भी [illegible] धाराधि [illegible] शास्त्र [illegible] आ जायें - तो वह उन [illegible] के कारण उन्हें पढ़ सकता है ? - या श्रवण कर सकता है ?

समा० — आपकी शंका ठीक नहीं, क्योंकि प्रश्न तो स्वाध्याय किया ही नहीं जा सकता है जिससे कि उनका साक्षात्कार रूप सामने आ जाय - और हम लोग उनका सेवन करके लाभ उठावें। दूसरे आपके कथन की इस लोक के साथ समानता भी नहीं बनती है - क्योंकि वहां तो यह कहा गया है कि साधु के अभाव में यह भावना भावे - और यदि दैववशात् साधु का लाभ हो जाय, तो उसे आहार दान दे देवे। इसी प्रकार यहां ऐसा कहना चाहिए कि - यदि - उस समय जिन ध्वनि का सुनना न - मिल रहा हो - तो यह भावना भावे। और यदि दैववशात् तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि सुनने का सुअवसर प्राप्त हो जाय, तो उसे सुनने का लाभ उठाना चाहिए।

दूसरे — जैसे श्रावक के लिए आज्ञा दी गई है कि उत्तम पात्र के अभाव में — मध्यम पात्र को, और उनके भी अभाव में जघन्य पात्र को आहार दान करके स्वयं भोजन करे। ऐसे ही यहां भी समझना चाहिए कि यदि उत्तम - तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि सुनने का लाभ न मिले तो आरातीय आचार्यों के वचन रूप शास्त्रों के पढ़ने-सुनने का ही लाभ उठावे। यही कारण है कि अकाल में आराधना, पंचसंग्रह आदि के स्वाध्याय का निषेध नहीं किया गया है।

इतना स्पष्ट विवेचन करने पर भी जो लोग अपना हठ न छोड़ें और यही कहते रहें - कि ये ग्रन्थ तो ध्यान के लिए ही हैं - [illegible] सिद्धान्त ग्रन्थों को छोड़कर [illegible] हैं - आदि ①। उन लोगों से मैं पूछना चाहता हूं - कि आखिर यह 'ध्यान' क्या बला है ? इस ध्यान के दो ही अर्थ हो सकते हैं - धर्मध्यान या शुक्लध्यान। यदि धर्म ध्यान को 'ध्यान' शब्द से ग्रहण करें - तो - भगवान् की आज्ञा [illegible] कैसे करें (आज्ञाविचय), [illegible] कैसे छूटें (अपायविचय) ? देखो लोग [illegible] कैसे [illegible] —

---

① उक्त अभिप्राय का एक लेख आज ही जैन [illegible] में छपा है।
लेखक।

(विपाक विचय) ? लोक संस्थान कहा कैसा-क्या है ? (संस्थान विचय) इत्यादि रूप ही चिन्तवन (ध्यान) किया जाता - जो कि सब ही द्वादशाङ्ग आगम के विषयभूत-तत्त्वों के चिन्तवन रूप है, और जैनेन्द्र सिद्धान्तों में भी ही तो 'अनुप्रेक्षा' नामक स्वाध्याय माना गया है। केवल शास्त्रालोचन अथवा वाचना मात्र ही तो स्वाध्याय नहीं है।

यदि 'ध्यान' शब्द से शुक्ल ध्यान को ग्रहण करें - तो अन्तिम दो शुक्ल ध्यान तो केवलियों के होते हैं - जहां ध्यान-ध्याता-ध्येय आदि की कल्पना ही नहीं रह जाती है। और आदि के दो शुक्ल ध्यान - आठवें गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक होते हैं, सो उन में भी - श्रुत-वचनों का ही मनन-चिन्तन हुआ करता है। क्योंकि आदि के दो ही शुक्लध्यानों के वितर्क और वीचार - होते हैं - और उनके लक्षणों में कहा गया है कि — विशेषेण तर्कणमूहनं वितर्कः श्रुतज्ञानमित्यर्थः। यदि श्रुतज्ञानं वितर्कस्तर्हि [illegible] अर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिर्वीचारः [illegible] —— xx एक श्रुतवचनादुपादाय वचनान्तरालम्बनं, तदपि विहायान्यदिति व्यञ्जनसंक्रान्तिः। (राजवार्तिक)। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे धर्म ध्यान हो चाहे शुक्ल ध्यान हो - दोनों में ही श्रुतज्ञान के विषयभूत पदार्थों का चिन्तवन-मनन होता है और इसी को लक्ष्य करके कहा गया है कि "[illegible] श्रुत केवल [illegible]"। इस प्रकार यह निष्कर्ष ~~[illegible]~~ निकलता है कि दोनों ही ध्यानों की दृष्टि से द्वादशाङ्ग के विषयभूत पदार्थ का ही चिन्तवन होता है। वह पदार्थ यदि 'पर' है, तो उसे 'व्यवहार-स्वाध्याय' कहना चाहिए और यदि 'स्व' है तो उसे 'निश्चय स्वाध्याय' कहना चाहिए। पर पदार्थों के स्वरूप का अभ्यास करना, चिन्तवन करना व्यवहार या द्रव्य स्वाध्याय है और स्व का - अपने आत्मा के - स्वरूप का चिन्तवन करना, मनन करना निश्चय या भाव स्वाध्याय है। इस व्याख्या के अनुसार दोनों ही प्रकार के ध्यान - स्वाध्याय की कोटि से बाहिर नहीं रह जाते हैं। और यह तो कहना ही नहीं पड़ता है कि स्वाध्याय अप्रमत्त छठे गुणस्थान तक ही होता है और आगे के गुणस्थानों में नहीं होता है। इससे भी काल में अकाल के स्वाध्याय का [illegible] ज्ञान हो जाता है।

उक्त निवेदन के फलितार्थ की — व्याख्या — की अपेक्षा — इस प्रकार समझना जाना चाहिए — कि गणधर प्रत्येकबुद्ध, श्रुतकेवली और अभिन्नदशपूर्वियों से कथित — शास्त्र (सूत्र) स्वाध्याय काल में नहीं पढ़े [illegible] । आचार्य आदि — निर्दिष्ट आराधना पञ्चसंग्रह आदि शास्त्र अकाल में पढ़ सकते हैं । (यहां स्वाध्याय-काल के [illegible] [illegible] किया गया है — स्वाध्याय को नहीं । क्योंकि मूलाचार टीका में [illegible] — [illegible] [illegible] होना बतलाया है, जो कि [illegible] ही होते हैं — स्वाध्याय समय नहीं । यदि होते भी हों तो कदाचित् कहीं [illegible] नहीं ।

अथवा — इसी प्रकार — [illegible] । से इस प्रकार भी व्याख्या कर सकते हैं कि सर्व आरम्भ परिग्रह-विरत साधु दोनों सन्ध्याओं में — [illegible] — [illegible] — नहीं कर सकता है क्योंकि वह दीपक आदि के प्रकाश बिना [illegible] नहीं । और [illegible] के आलोक [illegible] [illegible] [illegible] एवं [illegible] [illegible] व्यावहारिक [illegible] उपस्थित होता है जो कि साधुओं के लिए सर्वथा अनिष्ट है । किन्तु जो आरम्भ-परिग्रह में पड़े हुए, निरन्तर [illegible] वाले — श्रावक — [illegible] को [illegible] में भी पढ़ सकते हैं क्योंकि [illegible] वे लोग गार्हस्थिक कार्य करते हुए देखे जाते हैं । हां, जो श्रावक आरम्भ-परिग्रह विरत हो चुके हैं उनके लिए साधुओं की तरह ही नियम लगाना [illegible] ।

अथवा — स्वाध्यायादि अकालों में [illegible] [illegible] नहीं पढ़ सकते हैं [illegible] पढ़ सकते हैं । इत्यादि प्रकार से [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] चाहिए । क्योंकि [illegible] [illegible] में ही [illegible] किया गया है कि जैन [illegible] तो किसी भी [illegible] [illegible] आगमविहित नहीं है । [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिए [illegible] ही है, इसलिए उक्त प्रकार की व्यवस्था [illegible] [illegible] [illegible] एवं आगम-परिपुष्ट ही [illegible] चाहिए — मेरी [illegible] [illegible] कल्पित नहीं [illegible] चाहिए ।

मेरे इस उक्त कथन की पुष्टि — श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी होती है, देखिए — " जो कण्ठइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करेत्तए। तंजहा — पडिवाए, पच्चिवाए, मग्गसिरे, आसाढे। कप्पइ निग्गन्थाण वा निग्गन्थीण वा चउहिं सञ्झाहिं सज्झायं करेत्तए। पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे "

स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४ उद्देश २।

इस प्रकार उन कालों में स्वाध्याय- अस्वाध्याय का निर्णय कर दिया गया। अब दिग्दाह, उल्कापात आदि — जो अन्य अकालों का विचार किया जाता है कि उन्हें अकाल क्यों माना?

मूलाचार में दिग्दाह आदि जितने अकाल बतलाए हैं — उनका यथार्थ रूप विचार नहीं किया गया है। फिर भी हम उन्हें पांच विभागों में विभक्त कर सकते हैं। १ स्वाभाविक, २ आकस्मिक ३ दैविक ४ मानुषिक और ५ शारीरिक। वर्षा ऋतु में वर्षा होना, बादल होना, बिजली चमकना, मेघ गरजना, दुर्दिन होना आदि प्राकृतिक अकाल हैं, जो उनमें स्वाध्याय करने की मनाई नहीं है। किन्तु जब ये ही आकस्मिक होते हैं या दैविक होते हैं तो — उस समय स्वाध्याय करने की मनाई की गई है। जो दुर्दिन, मेघ-गर्जन आदि वर्षा ऋतु को छोड़कर (असमय) शीत या ग्रीष्म ऋतु में होते हैं — उन्हें आकस्मिक कहते हैं। किन्तु वे ही अन्य ऋतु में या वर्षा ऋतु में भी देवों द्वारा या किसी मनुष्य के मन्त्र-प्रयोग द्वारा किए — जाते हैं तो उन्हें आकस्मिक या दैविक कहते हैं — उनमें स्वाध्याय की मनाई है। जैसा कि कहा है —

" शोभाविकानि आकस्मिकानि, कदाचित् स्वाभाविकानि भवन्ति, कदाचित् देवकृतानि। तत्र स्वाभाविकेषु स्वाध्यायो न परिह्रियते, किन्तु देवकृतेषु परिह्रियते। "

व्यवहार सूत्र, उद्देश ७।

शंका — मेघ गर्जन, दुर्दिन आदि के स्वाभाविक होने से तो स्वाध्याय करने की मनाई नहीं है और आकस्मिक या दैविक होने पर मनाई की गई है, इसका क्या कारण है?

समाधान — स्वाभाविक मेघ गर्जनादिक के होने से किसी भी जीव को भय या क्षोभ नहीं उत्पन्न होता है। क्यों जानते हैं —

कि वहतो स्वयं होने का मौका ही है। बल्कि उसके होने पर लोग—सुनते ही समझते हैं कि कामधन्धा बन्द हो रहे हैं—कागज अखबार—आदि आदि। किन्तु जब वे असमय में होते हैं या आकस्मिक होते हैं, तो लोगों में भ्रम और क्षोभ मच जाता है—कि यदि इतने तक वर्षा हो गई तो यह जानी है या खड़ी हुई फसल चौपट हो जायगी, आदि। और स्वाध्याय करनेवाला चाहे साधु हो चाहे श्रावक, उसे तो लोकभय, जन-संक्षोभ आदि का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। व्यवहार में देखा ही जाता है कि यदि अपने पड़ोस में, किसी की मृत्यु हो जाती है तो लोग अपना व्यापार छोड़कर उसके दुःख में सम्मिलित होने पहुंचते हैं। चाहे वह स्वाध्याय, ध्यान की प्रवृत्ति करते क्यों न हों।

यहां शंका की जा सकती है कि श्रावक ऐसे अवसरों पर भले ही स्वाध्याय छोड़ दे—सा कर दे, परन्तु साधुओं को इन बातों से क्या प्रयोजन। उन्हें तो स्वाध्याय नहीं छोड़ना चाहिए?

समा०—नहीं लोक रुचि का साधुओं को भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है। यदि वे लोकव्यवहार की उपेक्षा करते हैं तो उनकी निन्दा होने लगती है और कभी २ तो उनपर बड़े २ उपद्रव भी आ जाते हैं। मेरी इस बात की पुष्टि भी आगम से होती है। देखिए—

"×× समस्तोऽपि लोको व्याकुलीभवति, तस्मिंश्च सति व्याकुलीभूते कायोत्सर्ग प्रभृतयः ; एते च आवश्यका निर्दुःखं पठ्यन्ते।

×× लोकाचारानुपालनाय ते। ×× अथवा तथा पठति—यथान कोऽपि श्रृणोतीति।" व्यवहार सूत्र उद्दे० ७।

इस प्रमाण से मेरे उक्त कथन की तो पुष्टि होती ही है—साथ ही एक बात का और भी आभास-खुलासा हो जाता है कि—अकाल में जो स्वाध्याय का निषेध है वह उच्चारण स्वाध्याय को ही लक्षित है, न कि भाव स्वाध्याय को लक्षित है। क्योंकि उक्त प्रमाण में स्पष्ट लिखा है कि—अथवा इस प्रकार पढ़े कि जिसमें कोई सुन न पाये। अर्थात् शास्त्र खोलकर पढ़ना, जोर से पढ़ना आदि द्रव्य स्वाध्याय है और बिना ही शास्त्र खोले पढ़ना, मन में पढ़ना, चिन्तन करना आदि भाव स्वाध्याय है।

स्व० चिन्दुगलाल अकाल में स्वाध्याय का कारण शारीरिक बाधा उत्तर ...

होते रहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि ग्रहण आदि के समय स्वाध्याय करने से बुद्धि की मंदता आदि दोष पैदा हो जाते हैं अथवा दुर्बल हो जाते हैं लकवा आदि बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। केवल यही कारण है कि [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] नहीं मिलते हैं [illegible] से प्रसिद्ध हुए। अतः ग्रहों के समय स्वाध्याय नहीं करें।

दो राजाओं में युद्ध होने, नगर में आग लगा देने, मार-काट होने, आदि के समय को 'व्युद्ग्रहण' 'अकाल' कहते हैं। इस समय में भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे प्रजा में [illegible] हो सकता है — कि देखो, हम लोग तो संकट में पड़े हुए हैं और ये निर्दयी बने — हमारे दुःख-दर्द की कुछ भी परवाह न करके स्वाध्याय में मस्त हो रहे हैं, आदि। यहाँ यह भी प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि [illegible] करे भी — तो अपने चित्त में [illegible] [illegible] [illegible] ध्यान का चिन्तवन करे। या भक्ति पाठ — दुःखभंजन [illegible] आदि उन स्तोत्रों का पाठ करे — जिनसे उन संकटों के दूर होने की शक्ति या भावना प्रकट रूप से की जाती है। वैसे स्वाध्याय — जोर से पढ़ने का कोई [illegible] या [illegible] नहीं है। क्योंकि लोगों में स्वतः यह भाव पैदा होगा — कि देखो अमुक व्यक्ति हमारे [illegible] दुःख के समय — हमें [illegible] [illegible] के लिए कैसी प्रार्थना कर रहा है — हमारा कितना हितू है आदि।

इस प्रकार करने पर वह अपने स्वाध्याय काल को भी [illegible] लेता है और लोगों के [illegible] का भाजन भी बन जाता है, निन्दा या क्रोध से बच जाता है। यथार्थ में स्वाध्याय तो वही है कि जिसकी किसी भी क्रिया से — किसी भी प्राणी को बाधा न पहुँचे, दिल तक न दुखे। वाह रे जैन शासन, तेरी महिमा अनुपम है अपरम्पार है कि प्राणिमात्र के हित का इतना सूक्ष्म ध्यान रखता है और विश्व के कल्याण में अपने कल्याण को ढूँढ़ता रहा है।

हड्डी, खून, मांस आदि के दीखने-स्पर्श करने पर जो स्वाध्याय की मनाई की गई है — उसे 'शारीरिक-अकाल' कहते हैं। इसका कारण तो स्पष्ट ही है कि द्रव्य शुद्धि की अपेक्षा — उक्त अवसरों को अकाल कहा गया है और इसलिए उक्त अकाल में द्रव्य स्वाध्याय ही मना है [illegible] [illegible] भाव स्वाध्याय करने में तो कोई [illegible] [illegible] है ही नहीं बल्कि ऐसे समय — भाव स्वाध्याय तो और भी अधिक भावों से — सम्पन्न हो सकता है।

बहुत से व्यक्ति यह आक्षेप उठा सकते हैं कि जितने भी प्रमाण आपने दिए हैं, वे तो श्वेताम्बर आगमों के हैं, हम तो उन्हें प्रमाण नहीं मानते आदि। उनसे मेरा निवेदन है कि प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को अपना यह सिद्धान्त रखना चाहिए कि 'युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः'। फिर उन्होंने कोई नये अकालों को घड़ नहीं दिए हैं, किन्तु अकालों को युक्तिपूर्वक सिद्ध किया है — जो कि बड़ी ही [illegible] युक्ति है। फिर भी यह कल्पना केवल श्वेताम्बर ग्रन्थों में ही पाई जाती है — ऐसी बात नहीं है। दिगम्बरों के [illegible] मूलाचार की टीका में उसी 'अकाल' के प्रकरण में इसी बात को [illegible] रूप से प्रकट किया है। तथा च —

इत्येवमाद्यन्येऽपि बहवः लोकव्यवहारकालवर्जिता
[illegible] दोषाः सर्वलोकानामुपद्रवहेतवः [illegible]
एते कालशुद्ध्या [illegible] दोषाः [illegible]
[illegible] राष्ट्रराजादि विघ्नकारिणो यत्नतो [illegible]
[illegible]। मूला० पृ० २३१

अर्थ — इत्यादिक अन्य भी बहुत से दोष लोकव्यवहार काल में वर्जित हैं, अतः छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वे सर्वलोक के उपद्रव के कारण हो सकते हैं — अर्थात् — कालशुद्धि में किए गए ये दोष [illegible], उच्चाटन, संघ, राष्ट्र और राजादि के विघ्न को करने वाले हैं उन्हें प्रयत्न से छोड़ना चाहिए।

× × ×

मैं समझता हूं, अपनी जाति का उत्तर [illegible] प्रारम्भ में उठाई गई तीनों शंकाओं का भलीभांति समाधान कर दिया गया है। फिर भी यदि किसी पाठक को कुछ [illegible] प्रतीत हो तो पत्र द्वारा [illegible] सकते हैं। मैं उनका यथाशक्ति समाधान [illegible]।

मैं उन विद्वानों का भी आभारी हूं [illegible] अनेक [illegible] — बिना किसी [illegible] कौन। मैं चाहता हूं कि [illegible] जिन [illegible] के होने के बाद उस विषय के [illegible] जाय [illegible] अतीव आवश्यक है।